Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

जीव–जगत् विमर्श : अरविन्द दर्शन के सन्दर्भ में

राहुल कुमार पाण्डेय
पूर्व शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

समकालीन भारतीय दर्शन के पुनरुत्थान का श्रेय जिन दार्शनिकों को है, उसमें श्री अरविन्द का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने सिद्धान्त में तो वेदान्त दर्शन को स्वीकार किया ही है, पर व्यावहारिक स्तर भी व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय चेतना को उसके अनुरूप सक्रिय करने की चेष्टा की है। उनका विश्वास था कि मानवीय चेतना अतिप्राज्ञ की दिशा में सक्रिय होने के लिए पूर्वनियत है, वही उसकी भावी उपलब्धियों की दिशा भी है, इसलिए उस दिशा में सक्रिय होने के लिए मानव जाति को आह्वान देने का सतत प्रयास किया है।

समस्त भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों एवं मनीषियों की भांति श्री अरविन्द ने भी अपने दर्शन में ब्रह्म, जीव, जगत् और मोक्षादि के विषय में विमर्श किया है। श्री अरविन्द के अनुसार जीव और जीवात्मा शब्द का अर्थ एक ही है। अरविन्द के ही शब्दों में ''मैंने जीव और जीवात्मा शब्द यहाँ तथा अन्य सभी स्थलों में सर्वथा एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये हैं।[1] आत्मा शब्द से भी उनका अभिप्राय वही है। उनके अनुसार, ''जीवात्मा जन्म और मरण से अतीत सदा एक रस वैयक्तिक आत्मा है। यह व्यक्ति की सनातन सत्य सत्ता है।[2]

श्री अरविन्द ने जीवात्मा को अजन्मा, सनातन तथा एक कहा है। ब्रह्म को भी उन्होंने अजन्मा, सनातन तथा एक कहा है। चूंकि जीवात्मा और ब्रह्म दोनों के गुण एक हैं अतः अरविन्द ने दोनों को अभिन्न माना है। श्री अरविन्द ने व्यष्टि तत्त्व जीव को परमतत्त्व की चेतना का ही केन्द्रीभूत अभिव्यक्त रूप माना है। उन्होंने जीव तथा ब्रह्म का सम्बन्ध पूर्णतः अभेद का माना है।

अपने अनुभव के आधार पर श्री अरविन्द ने जीवात्मा को ब्रह्म का अंश भी माना है। उन्होंने स्वयं कहा है, 'योगानुभव के अनुसार आत्मा या सत्ता भगवान् से एकीभूत है अथवा कम–से–कम भगवान् का अंश है और उसमें सभी दिव्य शक्तियाँ विद्यमान हैं।[3] इस प्रकार अरविन्द ने माना कि अंश रूप में जीवात्मा ब्रह्म से भिन्न है। उन्होंने ब्रह्म की तीन स्थितियों को बताया है। प्रथम स्थिति में ब्रह्म एक है, परात्पर है। अभिव्यक्ति के लिए यह ब्रह्म (सत्ता) पुरुष और प्रकृति दो रूप धारण करता है। द्वितीय स्थिति में, जिसे अरविन्द ने अतिमानसिक स्थिति भी कहा है, प्रकृति और पुरुष अभिन्न बने रहते हैं, यहाँ पुरुष ही ब्रह्म है वही जीवात्मा है। तृतीय स्थिति में सृष्टि रचना के लिए पुरुष और प्रकृति का द्वैत स्पष्ट होता है। वे द्वैत की स्थिति में आ जाते हैं। यहां पुरुष को विश्व प्रकृति अनेक रूप प्रदान करती है। श्री अरविन्द ने यह माना है कि स्वयं पुरुष पूर्ण है, दिव्य है परन्तु प्रकृति के वशीभूत होकर अज्ञानता प्राप्त करता है एवं अनेकता को

ग्रहण करता है, जिससे वह अपूर्ण बनता है। इस तरह श्री अरविन्द के अनुसार जीवात्मा ब्रह्म से भिन्न भी है ओर अभिन्न भी। यहाँ वे निम्बार्क के भेदाभेद सिद्धान्त से प्रभावित दिखायी पड़ते हैं।

श्री अरविन्द के अनुसार (केन्द्रीय पुरुष) जीवात्मा का जो अंश जन्म ग्रहण करता है वह अन्तरात्मा है और इसका प्रतिनिधि रूप है चैत्य पुरुष। जो जीवात्मा अतिमानसिक स्तर पर पूर्ण है, वह अपने प्रतिनिधि चैत्य पुरुष को प्रकृति की अपूर्णता का जामा पहनाकर अतिमन, मन और प्राण से होती हुई जड़ तक पहुँचती है। वह जीवात्मा तब तक विकसित होती रहती है, जब तक कि प्राणिक तथा मानसिक स्तर को पार कर अति मानसिक स्तर पर अवस्थित नहीं हो जाती। इस समस्त अवरोहण तथा आरोहण क्रम में पुरुष विश्व प्रकृति के उयुक्त कई रूप ग्रहण करता है।

श्री अरविन्द ने जीवात्मा को शरीर, मन तथा प्राण का अधिष्ठाता बताया हे। उनके अनुसार आत्मा शरीर में उसी प्रकार निहित है जैसे मन और प्राण। यह आत्मा इन तीनों को अधिष्ठित करता है। कठोपनिषद् में भी एक रूपक के द्वारा आत्मा को शरीर, मन तथा प्राण से भिन्न इन तीनों का अधिष्ठाता स्वीकार किया गया है। इसमें शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि, मन को लगाम तथा इन्द्रिय को घोड़े की संज्ञा दी गई है, जो कि विषय रूपी मार्ग पर चलते हैं, और आत्मा इस रथ का स्वामी है।[4]

श्री अरविन्द का कहना है कि ''जब तक हम आत्मा को अपने भीतर मनोमय, प्राणमय और अन्नमय आच्छादनों और छद्मवंशों में से निकालकर प्रकाशित और विकसित नहीं कर लेते, जब तक अपने भीतर आत्मा के आन्तरिक जीवन का निर्माण नहीं कर लेते तब तक यह स्पष्ट है कि कोई भी बाहरी दिव्य सम्भव नहीं हो सकता। कठोपनिषद् में भी यही बात कही गयी है।[5]

वस्तुतः श्री अरविन्द की जीवात्मा सम्बन्धी सभी धारणाओं के मूल स्त्रोत उपनिषद् तथा गीता हैं, किन्तु जीवात्मा के अंश अन्तरात्मा अर्थात् केन्द्रीय पुरुष का जड़ अर्थात् अन्नमय पुरुष तक अवतरण एवं जीवात्मा अर्थात् अतिमानसिक स्थिति तक आरोहण की व्याख्या तथा भावी अतिमानव की जीवात्मा के प्रति सचेतन रूप में जीवन व्यतीत करने की संभावना उनकी मौलिक देन है।

श्री अरविन्द ने भी अन्य दार्शनिकों की भांति जगत् के स्वरूप पर विचार किया है। उन्होंने जगत् को सच्चिदानन्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति माना है। उनके अनुसार ब्रह्म जितना सत्य है उतनी ही सत्य उसकी अभिव्यक्ति भी है। जैसे सोने से बना पात्र उससे भिन्न नहीं हो सकता, उसके गुण उस पात्र में निहित रहते हैं, वैसे जगत् उपादानकारण अधिष्ठान और आधार ब्रह्म तथा जगत् में अभेद है। यह अभेद उतना है जितना एक वास्तविक वस्तु में तथा उसके प्रतिरूप में होता है। यह धारण सांख्य दर्शन में भी मिलती है।

श्री अरविन्द ने ब्रह्म के चार तत्वों सत्, चित्त, आनन्द तथा अतिमानस से जगत् की सृष्टि माना है। ये चारों तत्त्व जगत में सर्वत्र व्याप्त हैं, परन्तु आवृत्त हैं। इसी जगत् और जीवन में इन तत्त्वों को अनावृत करना, अरविन्द दर्शन में मानव जीवन का उद्देश्य है। उनके अनुसार ब्रह्म जगत् में इसलिए है कि जीवन के तत्त्वों में वह अपने आपको प्रकट करे तथा जीवन में ब्रह्म की स्थिति इसलिए है कि जीवन ब्रह्म को अपने भीतर से खोज निकाले। गीता में भी यही बात कही गई है। उसके अनुसार चित्त शक्ति यानी प्रकृति सत्

अर्थात् ब्रह्म की अध्यक्षता में जगत् की रचना करती है। ब्रह्म अपनी चित्त शक्ति द्वारा सृष्टि रचना में प्रवृत्त होता है। इस तरह श्री अरविन्द तथा गीता दोनों ने सत्, चित्त और आनन्द तीन तत्त्वों से जगत् का निर्माण माना है परन्तु गीता अरविन्द दर्शन के चौथे तत्त्व अतिमन की चर्चा नहीं करती।

अतिमन तत्व श्री अरविन्द की अपनी मौलिक देन नहीं है, ''ऋग्वेद में एक स्थान पर ऋतचित् शब्द आता है, जो श्री अरविन्द के अतिमानव की धारणा को व्यक्त करता है।''[6] श्री अरविन्द कहते हैं कि ''इसी जगत् और जीवन का सत् अर्थात् आनन्द की स्थिति में दिव्य रूपानतर ही अतिमानसिक स्थिति है।'' श्री अरविन्द जगत् के निर्माण में एक व्यवस्थित क्रम विकास को निहित मानते हैं।

इस प्रकार श्री अरविन्द के अनुसार जगत् ब्रह्म की अभिव्यक्ति होने के कारण सत्य है। माया ब्रह्म की सत्य शक्ति है जो एक को अनेक, असीम को ससीम एवं अक्षर को क्षर रूप में अभिव्यक्त करती है। यह सच्चिदानन्द की लीला या क्रीडा है। लीलामय के स्वयं को सीमाओं, भेदों और विभाजनों में प्रकट कर लेने पर भी इन सबमें वही असीम, अभिन्न, अविभाग सच्चिदानन्द प्रकाशित हो रहा है। यह हमारी सीमित बुद्धि से, सविकल्पक तर्क से नितान्त अगोचर एवं अचिन्त्य है। उसके अनुसार इस रहस्य को 'अनन्त के तर्क' से हृदयङ्गम किया जा सकता है, सान्त बौद्धिक तर्क से नहीं।'

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. श्री अरविन्द के पत्र, प्रथम भाग, अनुवादक : चन्द्रदीप त्रिपाठी, पृ0 78, श्री अरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी, प्रथम, संस्करण 1974
2. श्री अरविन्द के पत्र, प्रथम भाग, अनुवादक : चन्द्रदीप त्रिपाठी, पृ0 78, श्री अरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी, प्रथम, संस्करण 1974
3. श्री अरविन्द के पत्र, प्रथम भाग, पृ0 81
4. कठोपनिषद् 1/3/3, 4
5. कठोपनिषद् 2/3/17– तं स्वच्छरीरात् प्रवृहेन्मुंजी दिवेषी कां धैर्येण
6. डॉ0एस0सी0 भट्टाचार्य, श्री अरविन्द दर्शन, पृ0 43, जगबन्धु प्रकाशन, श्रीरामकृष्ण भवन, ज्ञानपुर, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1973